अवधी लोक –साहित्य में नारी के विभिन्न आयाम

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉंधी राजकीय महिलामहाविधालय,
रायबरेली, उ.प्र

अवधी लोक साहित्य में नारी–पक्ष के विभिन्न पारिवारिक सम्बन्धों का विभाजन दो रूपों में किया जाता है–सुखद तथा दुःखद।

सुखद सम्बन्धों में उन पारिवारिक सम्बन्धों की चर्चा होती है जिनमें दोनों पक्षों को सुख की अनूभूति होती है। इन सम्बन्धों में सहयोग की भावना विद्यमान रहती है। वे एक दूसरे के लिए त्याग करने तथा कष्ट सहने के लिये तैयार रहते हैं। माता–पुत्र, भाई–बहन, पति–पत्नी आदि के सम्बन्ध सुख प्रदान करने वाले होते हैं।

दुःखद सम्बन्धों में दोनों पक्ष एक दूसरे पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की चेष्ठा करते है, जिनसे परस्पर द्वेष, क्लेश और कलह के वातावरण का सृजन होता है। इसके अन्तर्गत सास–बहू, ननद–भावज आदि के सम्बन्ध आते है।

जननी को जन्मभूमि से भी ऊँचा कहा गया है। पिता की अपेक्षा उसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बताया गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि समस्त पूजनीयों में पिता सबसे अधिक वन्दनीय है परन्तु गर्भ में धारण और पोषण करने वाली माता पिता से भी श्रेष्ठ है। माता पृथ्वी के समान क्षमाशील और सबका समान हित करने वाली है। अतः इस पृथ्वी पर माता से बढ़कर दूसरा बन्धु कोई नहीं है।

महानता, स्वार्थ शून्यता, कष्ट सहिष्णुता और क्षमाशीलता का दूसरा नाम है मातृत्व। नारी को नारी बनाने के लिये यह तत्व सर्वाधिक अपेक्षित है।

मातृत्व की पूर्णता पुत्र–जन्म के पश्चात ही होती है। पुत्र ही उसकी गोद का अमूल्य रत्न होता है। वही उसकी झोपड़ी को प्रकाशमान करने वाला अमूल्य रत्न होता है तथा वही उसके मरोरंजन का एक अपूर्व साधन भी होता है। पुत्र ने जन्म लिया नहीं कि घर का वातावरण सुख से भर गया।

मातृत्व के साथ ममत्व की भावना जुड़ी होती है। वह अपने आत्मज के प्रति अनेक कोमल भाव व्यक्त करती है जो लोरियों के मधुर स्वरों में निकल पड़ते हैं। बच्चे के चाक्षुस गोलकों में निद्रा को आमंत्रित करते हुए माँ के नेत्र भी मानों स्वयं बंद होने लगते हैं –

आजा निंदिया आजा तेरु हेरुँ बाट।
सोने के पाये जीमा रूपे की खाट।
मलमल के लाल बिछौना तकिया झालरदार।
एक लाल मोती जीमा लटके लाल अनार।।
मुन्नू के चार बहुयें दुइ गोर दुइ कार।
दूइ झुलावैं, दुई खिलावैं, लै सोन क प्यार।।

माता पुत्र कल्याण की मामना से अनेक व्रत धारण करती है तथा उत्सव मनाती है। व्रतों में संकष्ट चतुर्थी, सन्तान सप्तमी, हहोई, आठें आदि प्रमुख है। अवध में पुत्रहीन नारी का सम्मान नहीं होता।

वह कुलच्छिन मानी जाती है तथा विविध मांगलिक कार्यों से उसे पृथक ही रखा जाता है। इसके साथ यहाँ कन्या–जन्म को भी अशुभ माना जाता है। कन्या को जन्म देने वाली नारी की सर्वत्र उपेक्षा होती है। ऐसी सामाजिक हीनता का अन्त होना चाहिए।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में पत्नी पति की अनुगामिनी होती है। पति के बिना उसका जीवन नीरस और शून्य सा हो जाता है। मानसरकार का अभिमत भी इसी प्रकार का है।

पति की इच्छा ही पत्नी की इच्छा होती है। उसकी इच्छा के प्रतिकूल वह कुछ भी नही करती।

लोक जीवन में नारी अपने पति के अतिरिक्त पर पुरुष का ध्यान स्वप्न में भी नहीं करती। पति यदि अन्यत्र चला जाता है तो वह उसके विरह में रो–रोकर दिन काटती है। शिकार के लिए जाने वाले पति से वियुक्ता प्रार्थना करती है जो वास्तव में भावपूर्ण है–

जो मैं होतिउँ बन की कोइलिया बने रे बन
रहितेउँ हो ना।
मोरा हरि जानै अहेरिया तौ सबद सुनौतिउँ होना।

लोक में नवदम्पति पर कठोर नियंत्रण रखा जाता है जिससे कि उनका परस्पर मेल नहीं हो पाता है।

बेचारी पत्नी पर घर भर की सेवा का भार डाल दिया जाता है।

अत्यधिक दैनिक व्यस्तता के कारण उसे विश्राम के लिये अवकाश ही नहीं मिल पाता। सायंकाल के समय पति गाय दुहने लगता है तथा दूसरी ओर पत्नी भोजन बनाने में व्यस्त हो जाती है। अर्ध रात्रि में जब अवकाश मिला तो पति विश्राम करने लगा और दूसरी ओर पत्नी चक्की पीसने लगा। प्रातः होने से पूर्व पति बिस्तर त्यागने की तैयारी करने लगता है। बेचारी पत्नी की कैसी विचित्र स्थिति है ?

बदरिया झिमकत आवै मोरे राजा। साँझ भई दिया–बाती केर बिरिया।
राजा दुहावै लागे गइया। जेवना बनाऊँ मोरे राजा।। 1 ।।
अधी रात चपरसिया का फेरा। राजा बिछावै सुख सेजा।
मैं जतवाँ बहारौं मोरे राजा।। 2 ।।
भोर भए चहु चुहिया जो बोले। राजा सँवारे सिर पागा।
मैं जतँवा पर जूझन लागै मोरे राजा।। 3 ।।

अवध में बाल व वृद्ध विवाह भी होते हैं। दोनों ही अवस्थाओं में स्त्री को ही हार्दिक पीड़ा होती है। किसी स्त्री का पति बालक है तो अपने पिता को कोसती है जिसने ऐसा विवाह रचाया है–

गौने गई चित चाह भई सोयवै पिय संग सेज अटारी।
सेज चढ़त मन फीको लगत देत पिता को मनै मन गारी।।

अवध में नारियों के लिये विविध व्रतों का विधान है जिनके माध्यम से पति के कल्याण हेतु अनेक अनुष्ठान किये जाते हैं। 'करवा चौथ' का व्रत इसी हेतु रखा जाता है। प्राचीन काल में किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती है। उसे बताया गया है कि यदि निर्जला रहकर चतुर्थी का व्रत रखा जाये तो मृतपति जीवित हो जायेगा। उसने ऐसा ही किया और पति जीवित हो गया। "रात परे सुहाग कै देवी आछराभाई केर रूप धरके अइयें। उइ सुहाग कै देवी आहिं। वहु तुमार परीक्षा लेइयें तुमका दातन ते कटिये पर तुम उन केर पाँव नाँहि छोड़ेयो। उन्हहिन केरे हाथन मां

राजकुमार केर जियावैक संजीवनी बूटी है। अमरित केर घड़ा आय।"

इसी प्रकार का वट सावित्री (बरगद) का व्रत भी है जिसमें पत्नी पति के कलयाण का व्रत करती है। इस कथा में सावित्री के वाक चातुर्य्य से प्रभावित होकर यमराज ने सत्यवान को प्राणदान दिया। "तबै सावितरी कहिस कि तुमहीं बताओ बिना सत्यवान के यहु काम कइसे पूरे होय सकत है ? जमराज वहिकी बातन का सुनकै बहुत खुस भए और सत्यवान का दुवारा जन्म दै दीहिन्य।"

पत्नी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने पति की आज्ञा का अनुसरण करेगी तथा उसकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहेगी। पति की सेवा करने से उसे इहलोक में तो सुख प्राप्त होगा ही, परलोक में भी उसे सुख–शान्ति की प्राप्ति होगी। माता–पिता अपने पुत्र के लिए ऐसी ही वधू की खोज करते हैं, "एक मनई के कउनव लरकवा नाहीं रहै। लरकवा पावैक मारे वहिने बहुत सा पूजा–पाठ करवाइस। भगवान वहिका एक लरकवा दीहिन्य मुला वहिकी उमिर केवल बारह बरिस केरी रहै। जब लरकवा गियारह बरिस केर होय गवा तौ महतारी औरु बापु यहु चाहिन्य कि वाहिकी बिआव कर दीन्ह जाय।"

भाई यदि किसी कारणवश अपने बहनाई आलोचना करता है तो बहन उसे सहन नहीं कर पाती है। वह भाई को डाँटती है तथा अवसर पड़ने पर पति के अपमान के कारण उसे त्याग भी देती है। यही आदर्श सम्मान की भावना भारतीय नारी में पति के प्रति पाई जाती है–

मोरे पिछरवाँ लवंगिया की बगिया लवंग फूले आधी रात रे।
उतरे दुलहा दुलरुवा तुरही लवंगिया के फूल।
भितरा से निसरे बेटी के भइया हाथ धनुष मुख पान रे।
कहुँ तुहँ आये मोरे दरजवा तुरहँ लँवगिया के फूल।
भितराँ से बोली बेटी हथवा गजरा मुख पान रे।
भइया डाटौ आपन बहनाई फुलवा मैं देबे बटोर रे।

भारतीय संस्कृति के अनुसार भाई–बहन का सम्बन्ध अत्यन्त पावन रहा है। भाई बहन को संरक्षण प्रदान करता है तथा उसके सम्मान की रक्षा करता है।

विवाह के अवसर पर भाई द्वारा पूजा में भाग लेता है तथा रात्रि में लावा डालने का कार्य भी वही करता है। भाई लावा देकर यह कामना करता है कि उसके बहन–बहनोई सदैव धन–धान्य से पूर्ण रहें। भाई रक्षा बन्धन, भातृ द्वितीया, दशहरा, तीज, संक्रान्ति, बट सावित्री आदि अवसरों पर बहन के लिये उपहार भेजता है।

बहन के सुख–दुःख में भाई सहायक होता है। उसे सदैव बहन की चिन्ता रहती है। विदा के अवसर पर भाई बहन की पालकी पकड़कर रोता है। अश्रुओं से उसका सलूका और धोती भीग जाती है। बहन का वियोग उसके लिए असहाय हो जाता है और वह बेचैन होकर रोता हुआ भागता है। बहन भी भाई के वियोग की कल्पना करके दुःखी होती है।

ससुराल के समस्त कष्टों को बहन भाई से कह देती है। सास उसे अनेक कष्ट देती है। ननद जो कुछ ही दिनों की मेहमान है वह भी उसे अनेक कष्ट दिलाने का प्रयास करती है। जेठानी क्षण भर में प्रसन्न हो जाती है तथा क्षणभर में क्रोध करने लगती है। देवरानी की गति तो सबसे विचित्र है उसकी मनोभावनाओं को तो समझा ही नहीं जा सकता है–

सासू तो ए भइया बुढ़िया डोकरिया, आजु मरै की काल्हि रे।

ननदी तो ए भइया वन क कोइलिया, आजु उड़ै की काल्हि रे।

जेठानी तो ए भइया कारी बदरिया, छिनु बरसै छिनु पैठ रे।

अवध में भाई–बहन के स्नेह को व्यक्त करने वाला एक त्यौहार "भैयादूज" होता है। यह दीपावली के पश्चात् कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को मनाया जाता है। भाई अपनी–अपनी बहनों के घर जाते हैं तथा बहन भाइयों के तिलक करती हैं। उसी समय भाई बहनों के सम्मान की रक्षा का व्रत लेते हैं। जिन बहनों के भाई नहीं होते वे ऐसे अवसरों पर भाई के महत्व को समझती हैं। इसी प्रकार भाई भी बहन के महत्व को समझता है। इस सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित है जिनमें भाई बहन के अभाव में रोता है, "अम्मा का नीक होत अगर हमरेउ एक बहिनी होत जउन अपने मुन्ने–मुन्ने हाथन ते हमरे तिलक लगावत। भइया दूज आवै वाली है। सब भइया अपनी–अपनी बहिनिन से रोचना लगवावै जात हयँ या उनकी खुदै आय रही हैं। यहु कहत–कहत माधव रुआंसा होय गवा।"

भाई बहन के पास आता है। मार्ग में अनेक बाधायें आती हैं परन्तु वह धैर्य नहीं त्यागता। "नदी केर धारा वहिका बहावै लगा। माधौ कहत रहा तुम हमुका डुबोय लेव मुला एक बार अपनी पियारी बहिनी का देख आवै देव। मार्ग में चीता, भालू औरु तमाम जानवर मिले वह सबन ते यहि कहिस, भइया हम अपनी बहिनी का देख आई तब हमुका खाय लिहियो।"

भाई की बहन को केवल स्नेह नहीं करता वरन बहन भी भाई के लिये अनेक कष्ट उठाती है। एक भाई की बहन सूत कात रही थी। भाई मिलने आया परन्तु वह सूत्र कातती रही और भाई से मिलने न आ सकी। इसका एक मात्र करण यह है कि अवध में ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि चखें का तार टूटे हुए उठा जाये तो भाई की आयु कम हो जाती है।

बहन भाई का सदा ध्यान रखती है। एक बार भाई के लिए बहन के लड्डू बनाकर पाथेय के रूप में दिये पर ऐसा योग हुआ कि आटे में सर्प का बच्च अंधेरा होने के कारण पिस गया जब उसको विदित होता है कि यदि उसका भाई लड्डू को खा लेगा तो उसकी मृत्यु हो जायेगी। वह अपने बच्चों को रोता छोड़कर भाग कर भाई के पास आती है और पहुंच कर भाई से तुरन्त लड्डुओं को छीन लेती हैं। इस प्रकार वह अपने भाई की रक्षा करती हैं।

बहन अपने भाई को दुग्ध पान कराकर बलवान बनाना चाहती है जिससे वह रणक्षेत्र में शत्रुओं को परास्त कर सके –

छोटी मोरी दुहनी दूध के

बिन रे अग्नि भाँफ लेई,

बलैया लेऊँ बीरन।

रहे दूध पिये बीरन मोरा,

भैया लड़ै मुगलवा के साथ,

बलैया लेऊँ बीरन।

भारतीय भाई–बहन के पावन स्नेह का आदर्श अन्यत्र कहाँ मिला सकता है? इसमें स्वार्थ की गन्ध तक नहीं होती।

सास–बहू का सम्बन्ध अवध में सुखद नहीं है। सास बहू पर पुत्र बधू समझकर नियंत्रण करना चाहती है। बहू इसे सहन नहीं कर पाती फलस्वरूप सास–बहू के मध्य कालुष्य चला करता है। जो परिवार में अशान्ति का कारण बनता है। पर आज समय पड़ने पर सास कह उठती है कि उसकी सास उसको इतना अधिक कष्ट देती थी कि अगर वह होती तो उसको छठी का दूध याद

आ जाता। अब तो उसको किसी तरह का भी कष्ट नहीं दिया जा रहा है। इसी तर्क का बहुधा आश्रय लिया जाता है। परिणाम यह होता है कि बहू के मन में सास के प्रति सम्मान की भावना का ह्रास हो जाता है।

बहू स्वयं कष्ट सहन करती है। उसके कष्ट को सुनने वाला कोई नहीं है। वह अपने कष्टों का वर्णन केवल अपने भाई से कर सकती है। पर वह सोचती है कि ससुराल ही अब उसका घर है। अतः यहां की शिकायत करना उचित नहीं है। इस विचार से वह दुःख को मन ही मन में रख लेती हे।

सास बहू को चिमटे से पीटती है। उसकी पीठ–काठ जैसी कड़ी हो गयी है। कपड़े धोने के लिए साबुन भी नहीं देती जिससे वह मैली कुचैली बनी रहती है परन्तु बेचारी क्या करे क्योंकि वह तो पराधीन है।

पीठ देखौ भइया तौ पीठ देखौ जइसे हो धोबिया के घाट रे।

कपरा देखौ भइया तौ कपरा देखौ जइसे सवनवा कै वटरी रे।।

सास बहू के कटु सम्बन्ध का प्रस्तुत लोक कथा में स्पष्ट संकेत मिलता है "लच्छू केरी अम्मा तड़के उठत तब देखत की बहू बैठी भई पुरान मटकन का धोय–धोय कै दुछती पर जायकै भरत है। बहू यहु देखत तौ आग बबूला होय जात। चकिया पीसैक नामौ नाहीं लेत, बरनी बुहारी का वहिका सुधि नाहीं रहत। गइया गोरू का जानी–सानी करैक कोउ का सुधि नाँही रहत। गरजत भई कहिस, ऐ री बहू! यू का करती हव? तुमार दिमाग तौ नाँहीं फिर गवा है। इन पुरान माटी केरे डोबरन के धोवै मा परी हव। बहू चम्पो लम्बा सा घूंघट काढ़कै कहिस, तुम दादा का यही माटी केरे डोवरन माँ खाना देती हव। तुमरे कुल केरी जब याही रीति आय तबै तूम इन बासन का सँभार कै धरै हव। तुमरे काम अइये।"

इन कठोर बातों को सुनकर चोट लगना स्वाभाविक है। गृह कार्य करे तो कष्ट, न करे तो अपमान। किसी भी रूप में उसे चैन नहीं मिलता। रात–दिन यही कालुष्य सास–बहू के मध्य चला करता है जो पारिवारिक कलह तथा अशान्ति का कारण होता है।

परिवार में अशान्ति का वातावरण उस समय और व्याप्त हो जाता है जब सास समझती है कि बहू अब उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास कर रही है। वह बहू के कृत्यों की आलोचना करती है।

यह उसका पुत्र अनुसनी कर देता है तो उसकी भावना को बड़ा गहरा आघात पहुँचता है। नागर क्षेत्र में पाये जाने वाले एक 'बनरा गीत' में उसकी भावना को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है। पत्नी की धारणा है कि जब तक पति धन नहीं अर्जित करता तब तक तो सास का पुत्र है परन्तु जब वह धन अर्जित करता है तब वह उसका पति है–

बन्ना–बन्ना मत कर सासू अब तो यह बालम मोरा है।

जब यह बन्ना धोती पहने तब यह बेटा तोरा है।

जब यह बन्ना सूट पहने तब यह बालम मोरा है।

जब यह बन्ना कॉलेज जावे तब यह बालम मोरा है।

जब यह बन्ना दफतर जावे तब यह बालम मोरा है।

जब यह बन्ना पइसा माँगे तब यह बेटा तोरा है।

जब यह बन्ना रुपया लावे तब यह बालम मोरा है।

बन्ना–बन्ना मत कर सासू अब तो यह बालम मोरा है।

अवधी लोक साहित्य में कुछ ऐसे लोक गीत तथा लोक कथाएँ भी मिलती हैं जिनसे कौटुम्बिक कटुता का निवारण होता है। एक बहू के पुत्र पैदा हुआ जो बड़ा सुन्दर है। पूछने पर बहू उत्तर देती है कि उसने त्रिवेणी में स्नान तथा माघ मास में कभी अग्नि से अपने शरीर को गर्म नहीं किया। भूखे ब्राह्मणों को भोजन कराया। गाजर और बेर खाये, सेब, नारंगी को छील–छीलकर खाया। सास की सेवा की तथा ननद–देवर को प्यार किया अतः उसे सुन्दर–स्वस्थ्य पुत्र–रत्न की प्राप्ति हुई–

मचिया बैठी सासु त बहुआ से अरज करें, मोरी ए बहुआ कवन तप कीन्हें ?

होरिलवा बड़ सुन्दर।

माघ नहानी तिरबेन माघौ अग्नि नहिं तापू, मोरी ए सासू, भूखे ब्रह्मना जेवायेऊ

होरिलवा.....।

मोरी ए बहुआ कवन–कवन फलखायेउऊ ?

होरिलवा.....।

नित उठ गाजर खायेउँ मोरी ए बहुआ कवन–कवन फल खायेउँ ?

होरिलवा.....।

पीछे बैठी दौरानी त बहुआ से अरज करैं, मोरी ए जीजी कवन–कवन तप कीन्हें?

होरिलवा...।

ससुर का कहना नाहि टारेउँ सास सेवा करेउँ बहू–ननद–देवर करुँ पियार,

होरिलवा.....

ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि प्रातः काल कोई स्वप्न देखा जाये तो वह सत्य हो जाता है। एक बहू ने प्रातःकाल स्वप्न में देखा है कि आँगन में ब्राह्मण गाय का बछड़ा लिए खड़ा है। हरी–हरी दूब और आम के वृक्ष में बौर लगे हैं। सास समझाती है कि हे बहू किसी दूसरे से इस स्वप्न की चर्चा मत करना क्योंकि ये पुत्र–प्राप्ति कि शुभ लक्षण हैं।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि यदि सास बहू के साथ पुत्रीवत् व्यवहार करे और बहू मातृवत् तो कटुता का शीघ्र निवारण हो सकता है पर ऐसा होता नहीं है।

ननद तथा भावज का सम्बन्ध अवधी समाज में सुखद नहीं मिलता। यह भी सास–बहू के सम्बन्ध में जैसा कटु चित्रित किया गया है। ननद भावज पर अधिकार जमाना चाहती है तथा यह इच्छा करती है कि वह सदैव उसकी सेवा करती रहे। पुत्र–जन्म के अवसर पर ननद नेग माँगती है और वांछित वस्तु के न मिलने पर रार उठाती है–

जच्चा तेरी ननद आवेगी, सतिये धराई नेग माँगेगी।

तुम उनका नेग दिला देना, नाहीं तुम से रार मचायेगी।

भाई किसी कारणवश बहन के घर नहीं जा पाता है तो बहन उपालंभ देने लगती है कि भावज ने उसे मना कर दिया होगा। प्रकारान्तर से बेचारी बहू को कष्ट दिया जाता है।

ननद सदैव आलोचना का अवसर ढूँढा करती है। भावज ने यदि कभी भूले भटके उत्तर दे दिया तो मानों उस पर आपदाओं का पर्वत ही ढह पड़ा। ननद की गालियाँ भावज तक सीमित नहीं रहतीं वह तो उसके मायके के सदस्यों को हाथ फैलाकर कोसती हुई लड़ती है जब उसे

इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाती है तब वह शान्त हो जाती है–

आँगन माँ फिरहिं जच्चा रानी हाथ माँ गोबर लिहै,
सासू कवन महल मोहि देहौ, तवन घर लीपब हो ।। 1 ।।

भैया तो बोल न पावे कि ननद उठि बोले।
अम्मा यहि हरजोतबा की बिटिया, दिहेउ घर भुसड़ला।। 2 ।।

दूरि ते आये सिर साहेब, तड़पि–तड़पि बोले।
बहिनी बड़े रे साहेब की बिटिया, दिहेउ घर ओवरि।। 3 ।।

होत भोर फाटत होरिल जनम भये, बाजै लागी आनन्द बधैया
उठन लागे सोहर।। 4 ।।

बाहर बाजै बधैया भीतर उठे सोहर,
लट खोले झगड़े ननदिया,
कंगन भौजी लेबई।। 5 ।।

केतनो ननदी तू नाचौ जियरा नाहिं हुलसै,
ननदी समुझते आपन बोल,
दिहेउ घर भुउडला।। 6 ।।

"सौत" शब्द 'सपत्नी' का अपभ्रंश रूप है। पुरुष की दो या दो से अधिका स्त्रियाँ आपस में सौत कही जाती है। सौतें सदैव परस्पर ईर्ष्या अथवा वैमनस्य की भावना से पूर्ण होती है इससे घर में निरन्तर कलह का वातावरण व्याप्त रहता है।

अवधी लोक गीतों में 'सौत' का अत्यन्त कारूणिक वर्णन प्राप्त होता है। एक लोकगीत में पत्नी अपने पति के अत्यन्त दैन्य प्रदर्शित करते हुए प्रार्थना करती है कि वह (पति) सौत के साथ विदेश गमन न करे यदि वह कहेगा कि भूख लगी तो वह पूड़ी कचौड़ी तथा अन्य स्वादिष्ट व्यंजन मंगाकर उसे खिला देगी। वह तो यहाँ तक प्रस्तुत है कि पति के साथ 'सौत' की भी हर प्रकार से सेवा करेगी–

पिया विदेसिया जाव सवतिया संग,
जो तू कहिये भूख लगी है,
पूरी–कचेरी–जलेवी मँगाय देवै,
जो तू कहियो सवतिया केर सेवा करौ,
रातौ–दिनौ तुमरे संग उइकी सेवा करबे।

इसके अतिरिक्त 'सौत' को सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण करने को प्राप्त होते हैं। परन्तु उस बेचारी के पासतन ढँकने के लिये वस्त्र तक नहीं आभूषणों की कौन कहे–

सवतिया तौ सुन्दर–सुन्दर कपरा–गहना पहनै रे,
हमरे तो एक फाटी दुहतिया रे।

यदि वह उत्तर देती है तो पति से घर आते ही शिकायत की जाती है जिससे उस पर मार भी पड़ती है। बेचारी रोते हुए अपने भाग्य को कोसती है–

काहे नेहिया लगाये कुबरी सवतिया,
मोरे पिया संग रे।
दिनामान पनिया भरावै, खाँची भर बसना मँजावै।
दिनामान मोहिका सतावै, सो मोसे सहा न जाय।
चुगली करत पियहु मोहिका मारैं,
काहे नेहिया लगावै कुबरी सवतिया,
मोरे पिया संग रे।

सौतिया डाह की पराकाष्ठा का चित्रण इस विरहे में कितना स्पष्ट मिलता है। दृष्टव्य है–

जारी का काँटा कलेजवा सालै, जस बदरी का घाम।

सौत का लरिका कनियाँ सालै, ज्यों–ज्यों होय सयान।

सन्दर्भ–सूची

- ✓ आधुनिक ब्रज और अवधी काव्य में लोकतत्व– डॉ. आर.पी. वर्मा
- ✓ अवधी और उसका साहित्य – डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित
- ✓ अवधी लोक साहित्य – डॉ. सरोजनी वार्ष्णेय
- ✓ अवधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ. विद्या
- ✓ अवधी लोकगीत संग्रह – डॉ. विद्याविन्दु सिंह
- ✓ अवधी लोकगीत और परंपरा – डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय
- ✓ लोक साहित्य विधाएँ एवं दिशाएँ – डॉ. कैलाश चन्द्र अग्रवाल

पत्र–पत्रिकाएँ

- अवधी भारत (जनवरी, सितम्बर, दिसम्बर 1956 ई.)
- अवधी (त्रैमासिकी) – डॉ. गिरिजा शंकर मिश्र
- नागरी प्रचारिणी पत्रिका – काशी
- सम्मेलन पत्रिका – लोक संस्कृति अंक संवत् – 2010

Copyright © 2016, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.